गायत्री की पंचविधि दैनिक साधना

■ श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री की पञ्चविध दैनिक साधना

गायत्री द्वारा जीवन का कायाकल्प

गायत्री मंत्र से आत्मिक कायाकल्प हो जाता है। इस महामंत्र की उपासना आरम्भ करते ही साधक को ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे आन्तरिक क्षेत्र में एक नई हलचल एवं रद्दोबदल आरम्भ हो गई है। सतोगुणी तत्त्वों की अभिवृद्धि होने, दुर्गुण, कुविचार, दुःस्वभाव एवं दुर्भाव घटने आरम्भ हो जाते हैं और संयम, नम्रता, पवित्रता, उत्साह, स्फूर्ति, श्रमशीलता, मधुरता, ईमानदारी, सत्य-निष्ठा, उदारता, प्रेम, सन्तोष, शान्ति, सेवा-भाव, आत्मीयता आदि सद्‌गुणों की मात्रा दिन-दिन बड़ी तेजी से बढ़ती जाती है। फलस्वरूप लोग उनके स्वभाव एवं आचरण से सन्तुष्ट होकर बदले में प्रशंसा, कृतज्ञता, श्रद्धा एवं सम्मान के भाव रखते हैं और समय-समय पर उसकी अनेक प्रकार से सहायता करते हैं। इसके अतिरिक्त ये सद्‌गुण स्वयं मधुर होते हैं, जिस हृदय में इनका निवास होगा, वहाँ आत्म-संतोष की परम शान्तिदायक शीतल निर्झरणी सदा बहती रहेगी।

गायत्री साधना से साधक के मनःक्षेत्र में असाधारण परिवर्तन हो जाता है। विवेक, तत्त्वज्ञान और ऋतम्भरा बुद्धि की अभिवृद्धि हो जाने के कारण अनेक अज्ञान-जन्य दुःखों का निवारण हो जाता है। प्रारब्धवश अनिवार्य कर्मफल के कारण कष्टसाध्य परिस्थितियाँ हर एक के जीवन में आती रहती हैं। हानि, शोक, वियोग, आपत्ति, रोग, आक्रमण, विरोध, आघात आदि की विभिन्न परिस्थितियों में जहाँ साधारण मनोभूमि के लोग मृत्युतुल्य कष्ट पाते हैं, वहाँ आत्मबल सम्पन्न गायत्री साधक अपने विवेक, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आशा, धैर्य, संयम, ईश्वर-विश्वास के आधार पर इन कठिनाइयों को हँसते-हँसते आसानी से काट लेता है। बुरी अथवा साधारण परिस्थितियों में भी अपने आनन्द का मार्ग ढूँढ़ निकालता है और मस्ती एवं प्रसन्नता का जीवन बिताता है।

संसार का सबसे बड़ा लाभ 'आत्मबल' गायत्री साधक को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के सांसारिक लाभ भी होते देखे गये हैं। बीमारी, कमजोरी, बेकारी, घाटा, गृह-कलह, मनोमालिन्य, मुकदमा, शत्रुओं का आक्रमण, दाम्पत्य सुख का अभाव, मस्तिष्क की निर्बलता, चित्त की अस्थिरता, सन्तान-दुःख, कन्या के विवाह की कठिनाई, बुरे भविष्य की आशङ्का, परीक्षा में उत्तीर्ण न होने का भय, बुरी आदतों के बन्धन, ऐसी कठिनाइयों में ग्रसित अगणित व्यक्तियों ने आराधना करके अपने दुःखों से छुटकारा पाया है।

कारण यह है कि हर एक कठिनाई के पीछे जड़ में निश्चय ही कुछ न कुछ अपनी त्रुटियाँ, अयोग्यताएँ एवं खराबियाँ रहती हैं। सद्गुणों की वृद्धि के साथ अपने आहार-विहार, दिनचर्या, दृष्टिकोण, स्वभाव एवं कार्यक्रम में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन ही आपत्तियों के निवारण का सुख-शान्ति की स्थापना का राजमार्ग बन जाता है। कई बार हमारी इच्छाएँ, तृष्णाएँ, लालसाएँ, कामनाएँ ऐसी होती हैं, जो अपनी योग्यता एवं परिस्थितियों से मेल नहीं खातीं। मस्तिष्क शुद्ध होने पर बुद्धिमान् व्यक्ति मृग-तृष्णाओं को त्यागकर अकारण दुःखी रहने से, भ्रम-जंजाल से छूट जाता है। अवश्यम्भावी न टलने वाले प्रारब्ध का भोग जब सामने आता है, तो साधारण व्यक्ति बुरी तरह रोते-चिल्लाते हैं, किन्तु गायत्री साधक में इतना आत्मबल एवं साहस बढ़ जाता है कि वह उन्हें हँसते-हँसते झेल लेता है।

किसी विशेष आपत्ति का निवारण करने एवं किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी गायत्री की साधना की जाती है। बहुधा इसका परिणाम बड़ा ही आशाजनक होता है। देखा गया है कि जहाँ चारों ओर निराशा, असफलता, आशंका और भय का अन्धकार ही छाया हुआ था, वहाँ वेदमाता की कृपा से एक दैवी प्रकाश उत्पन्न हुआ और निराशा आशा में परिणत हो गई, बड़े कष्टसाध्य कार्य तिनके की तरह सुगम हो गये। ऐसे अनेक अवसर अपनी आँखों के सामने देखने के कारण हमारा यह अटूट विश्वास हो गया है कि कभी किसी की गायत्री साधना निष्फल नहीं जाती।

गायत्री साधना, आत्मबल बढ़ाने का अचूक आध्यात्मिक व्यायाम है। किसी को कुश्ती में पछाड़ने एवं दङ्गल में जीतकर इनाम पाने के लिए कितने लोग पहलवानी और व्यायाम का अभ्यास करते हैं। यदि कदाचित् कोई अभ्यासी किसी कुश्ती को हार जाय, तो भी ऐसा नहीं समझना चाहिए कि उनका प्रयत्न निष्फल गया। इसी बहाने उसका शरीर तो मजबूत हो गया, वह जीवन भर अनेक प्रकार से, अनेकों अवसरों पर बड़े-बड़े लाभ उपस्थित करता रहेगा। निरोगता, सौन्दर्य, दीर्घजीवन, कठोर परिश्रम करने की क्षमता दाम्पत्य सुख, सुसन्तति, अधिक कमाना, शत्रुओं से निर्भयता आदि कितने ही लाभ ऐसे हैं, जो कुश्ती पछाड़ने से कम महत्त्वपूर्ण नहीं। साधना से यदि कोई विशेष प्रयोजन प्रारब्धवश पूरा भी न हो, तो भी इतना तो निश्चय है कि किसी प्रकार साधना की अपेक्षा कई गुना लाभ अवश्य मिलकर रहेगा।

आत्मा स्वयं अनेक ऋद्धि-सिद्धियों का केन्द्र है। जो शक्तियाँ परमात्मा में हैं, वे ही उनके अमर युवराज आत्मा में हैं। समस्त ऋद्धि-सिद्धियों का केन्द्र आत्मा में है; परन्तु जिस प्रकार राख से ढका हुआ अंगारा मन्द हो जाता है, वैसे ही आन्तरिक मलिनता के कारण आत्मतेज कुंठित हो जाता है। गायत्री साधना से मलिनता का पर्दा हटता है और राख हटा देने से, जैसे अंगार अपने प्रज्वलित स्वरूप में दिखाई पड़ने लगता है, वैसे ही साधक की आत्मा भी अपने ऋद्धि-सिद्धि समन्वित ब्रह्मतेज के साथ प्रकट होती है। योगियों को जो लाभ दीर्घकाल तक कष्टसाध्य तपस्यायें करने से प्राप्त होता है, वही लाभ गायत्री साधकों को स्वल्प प्रयास से ही प्राप्त हो जाता है।

गायत्री उपासना का यह प्रभाव इस समय भी समय-समय पर दिखाई पड़ता है। इन सौ-पचास वर्षों में ही सैकड़ों व्यक्ति इसके फलस्वरूप आश्चर्यजनक सफलताएँ पा चुके हैं और अपने जीवन को इतना उच्च और सार्वजनिक दृष्टि से कल्याणकारी तथा परोपकारी बना चुके हैं कि उनसे अन्य सहस्रों लोगों को प्रेरणा प्राप्त हुई है। गायत्री साधना में आत्मोत्कर्ष का गुण इतना अधिक पाया जाता है कि उसके सिवाय कल्याण और जीवन सुधार का कोई अनिष्ट हो ही नहीं सकता।

प्राचीनकाल में महर्षियों ने बड़ी-बड़ी तपस्याएँ और योगसाधनाएँ करके अणिमा, महिमा आदि ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। उनकी चमत्कारी शक्तियों के वर्णन से इतिहास-पुराण भरे पड़े हैं, वह तपस्या और योग-साधना गायत्री के आधार पर ही की थी। अब भी अनेक ऐसे महात्मा मौजूद हैं, जिनके पास दैवी शक्तियों और सिद्धियों का भण्डार है, उनका कथन है कि गायत्री से बढ़कर योगमार्ग में सुगमता की स्थिति प्राप्त करने का दूसरा मार्ग नहीं है। सिद्ध पुरुषों के अतिरिक्त सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी सभी चक्रवर्ती राजा गायत्री के उपासक रहे हैं। ब्राह्मण लोग गायत्री की ब्रह्म शक्ति के बल पर जगद्गुरु थे, क्षत्रिय गायत्री के गर्भ से तेज को धारण कर चक्रवर्ती शासक थे।

यह सनातन सत्य आज भी वैसा ही है। गायत्री माता का आँचल श्रद्धापूर्वक पकड़ने वाला मनुष्य कभी भी निराश नहीं रहता।

साधकों के लिए कुछ आवश्यक नियम

गायत्री-साधना करने वालों के लिए कुछ आवश्यक जानकारियाँ नीचे दी जाती हैं।

(१) शरीर को शुद्ध करके साधना पर बैठना चाहिए। साधारणतः स्नान के द्वारा ही शुद्धि होती है, पर किसी विवशता, ऋतुप्रतिकूलता या अस्वस्थता की दशा में हाथ-मुँह धोकर या गीले कपड़े से शरीर पोंछकर भी काम चलाया जा सकता है।

(२) साधना के समय शरीर पर कम से कम वस्त्र रहने चाहिए। शीत की अधिकता हो, तो कसे हुए कपड़े पहनने की अपेक्षा कम्बल आदि ओढ़कर शीत निवारण कर लेना उत्तम है।

(३) साधना के लिए एकान्त, खुली हवा की ऐसी जगह ढूँढ़नी चाहिए, जहाँ का वातावरण शान्तिमय हो। खेत, बगीचा, जलाशय का किनारा, देव-मंदिर इस कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं, पर जहाँ ऐसा स्थान मिलने में असुविधा हो, वहाँ घर का कोई स्वच्छ, शान्त भाग भी चुना जा सकता है।

(४) धुला हुआ वस्त्र पहनकर साधना करना उचित है।

(५) पालथी मारकर सीधे-सीधे ढङ्ग से बैठना चाहिए। कष्टसाध्य आसन लगाकर बैठने से शरीर को कष्ट होता है और मन बार-बार उचटता है, इसलिए इस तरह बैठना चाहिए कि देर तक बैठे रहने में असुविधा न हो।

(६) रीढ़ की हड्डी को सदा सीधा रखना चाहिए। कमर झुकाकर बैठने से मेरुदण्ड टेढ़ा हो जाता है और सुषुम्ना नाड़ी में प्राण का आवागमन होने में बाधा पड़ती हैं।

(७) बिना बिछाये जमीन पर साधना करने के लिए न बैठना चाहिए। इससे साधना काल में उत्पन्न होने वाली शारीरिक विद्युत् जमीन में उतर जाती है। घास या पत्तों से बने हुए आसन सर्वश्रेष्ठ हैं। कुश का आसन, चटाई, रस्सियों का बना फर्श सबसे अच्छा है। इसके बाद सूती आसनों का नम्बर है। ऊन के तथा चर्म के आसन तान्त्रिक कर्मों में प्रयुक्त होते हैं।

(८) माला तुलसी या चन्दन की लेनी चाहिए। रुद्राक्ष, लाल चन्दन, शंख, मोती आदि की माला गायत्री के तान्त्रिक प्रयोगों में प्रयुक्त होती है।

(९) प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त में जप आरम्भ किया जा सकता है। सूर्य अस्त होने के दो घण्टे बाद तक जप समाप्त कर लेना चाहिए। रात्रि के अन्य भागों में गायत्री की दक्षिणमार्गी साधना नहीं करनी चाहिए। तान्त्रिक साधनाएँ अर्धरात्रि के आस-पास की जाती है। तीर्थ क्षेत्रों में या अखण्ड जप साधनाओं में यह प्रतिबन्ध लागू नहीं होते।

(१०) साधना के लिए चार बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। (अ) चित्त एकाग्र रहे, मन इधर-उधर न उछलता फिरे। यदि चित्त बहुत दौड़े, तो उसे माता की सुन्दर छवि के ध्यान में लगाना चाहिए। (ब) माता के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास हो, अविश्वासी और शंकित मति वाले पूरा लाभ नहीं पा सकते। (स) दृढ़ता के साथ साधना पर अड़े रहना चाहिए। अनुत्साह, मन उचटना, नीरसता प्रतीत होना, जल्दी लाभ न मिलना अस्वस्थता तथा अन्य सांसारिक कठिनाइयों का मार्ग में आना साधना के

विघ्न हैं। इन विघ्नों से लड़ते हुए अपने मार्ग पर दृढ़तापूर्वक बढ़ते हुए चलना चाहिए। (द) निरन्तरता साधना का आवश्यक नियम है। अत्यन्त कार्य होने या विषम स्थिति आ जाने पर भी किसी न किसी रूप में चलते-फिरते सही, पर माता की उपासना अवश्य कर लेनी चाहिए। किसी भी दिन नागा या भूल न करनी चाहिए। समय को रोज-रोज न बदलना चाहिए। कभी सबेरे, कभी दोपहर, कभी तीन बजे, तो कभी दस बजे, ऐसी अनियमितता ठीक नहीं। इन चार नियमों के साथ की गई साधना बड़ी प्रभावशाली होती है।

(११) कम से कम एक माला अर्थात् १०८ मंत्र नित्य जपने चाहिए इससे अधिक जितना बन पड़े उत्तम है।

(१२) प्रातःकाल की साधना के लिए पूर्व को मुँह करके बैठना चाहिए और शाम को पश्चिम को मुँह करके। प्रकाश की ओर-सूर्य की ओर मुँह उचित है।

(१३) पूजा के लिए फूल न मिलने पर चावल या नारियल की गिरी को कद्दूकस पर कसकर उसके बारीक पत्रों को काम में लाना चाहिए। यदि किसी विधान में रङ्गीन पुष्पों की आवश्यकता हो, तो चावल या गिरी के पत्रों को केशर, हल्दी, गेरू, मेंहदी के देशी रंगों से रंगा जा सकता है। विदेशी अशुद्ध चीजों से बने रंग काम में नहीं लेने चाहिए।

(१४) मंत्र जप इस प्रकार करना चाहिए, जिसमें कण्ठ, ओष्ठ, जिह्वा तो चलते रहें, परन्तु उच्चारण इतना मंद हो कि पास में बैठा हुआ व्यक्ति भी उसे ठीक तरह सुन न सके।

(१५) पूजा के समय कलश रूप में जल पात्र रखना चाहिए और अग्नि की साक्षी के लिए दीपक या धूपबत्ती जला लेनी चाहिए। इस प्रकार अग्नि और जल की साक्षी में किया हुआ जप अधिक प्रभावशाली होता है। आचमन के लिए जल-पात्र अलग से रखना चाहिए। पूजा के अन्त में कलश रूप में स्थापित जल सूर्य की दिशा में प्रातःकाल पूर्व में और सायंकाल पश्चिम में अर्घ्य जल को चढ़ा दिया जाए।

(१६) महिलाएँ मासिक धर्म के दिनों में माला सहित जप न करें।

अँगुलियों पर गिनकर मानसिक जप किसी भी स्थिति में किया जा सकता है।

(१७) शाप मोचन, मुद्रा, कवच, कीलक, अर्गला आदि की आवश्यकता तान्त्रिक पुरश्चरणों में पड़ती है, साधारण उपासना में उनकी आवश्यकता नहीं है।

(१८) गायत्री को गुरुमंत्र कहा गया है। जो अपने तप-प्राण एवं पुण्य का अंश देने में समर्थ हों, ऐसे अधिकारी गुरु से गायत्री की मंत्र दीक्षा लेकर उपासना करना फलप्रद होता है।

(१९) स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह ही गायत्री उपासना का पूर्ण अधिकार है।

(२०) यज्ञोपवीत धारण करके गायत्री उपसना करना अधिक श्रेयस्कर है। पर किसी कारणवश कोई उसे धारण न कर सके, तो भी गायत्री उपासना बिना यज्ञोपवीत के हो ही न सकेगी ऐसा प्रतिबंध नहीं है।

(२१) रात्रि में जप हो सकता है, पर उस समय मानसिक जप करना चाहिए।

(२२) देर तक एक पालथी से एक आसन से बैठे रहना कठिन होता है, इसलिए जब एक तरह से बैठे-बैठे थक जाएँ, तब उन्हें बदला जा सकता है। इसे बदलने में कोई दोष नहीं है।

(२३) मल-मूत्र त्याग या किसी अनिवार्य कार्य के लिए साधना के बीच में उठना पड़े, तो शुद्ध जल से हाथ-मुँह धोकर, तब दुबारा बैठना चाहिए और विक्षेप के लिए एक माला अतिरिक्त जप प्रायश्चित स्वरूप करना चाहिए।

(२४) यदि किसी दिन अनिवार्य कारण से साधना स्थगित करनी पड़े, तो दूसरे दिन एक माला अतिरिक्त जप दण्ड स्वरूप करना चाहिए।

(२५) जन्म, मृत्यु का सूतक हो जाने पर शुद्धि होने तक माला आदि की सहायता से किये जाने वाला विधिवत् जप स्थगित रखना चाहिए। केवल मानसिक जप मन ही मन चालू रख सकते हैं।

(२६) लम्बे सफर में होने पर, स्वयं रोगी हो जाने या तीव्र रोगी की सेवा में संलग्न रहने की दशा में स्थान आदि पवित्रता की सुविधा नहीं रहती । ऐसी दशा में मानसिक जप बिस्तर पर पड़े-पड़े, रास्ता चलते या किसी पवित्र-अपवित्र दशा में किया जा सकता है। मानसिक जप का अर्थ है बिना होठ हिलाये मन ही मन जप करना।

(२७) साधक का आहार-विहार सात्विक् होना चाहिए। आहार में सतोगुणी, सादा, सुपाच्य, ताजे तथा पवित्र हाथों से बनाए हुए पदार्थ होने चाहिए। अधिक मिर्च-मसाले वाले तले हुए पकवान्, मिष्टान्न, बासी बुसे, दुर्गन्धित, मांस, नशीले, अभक्ष्य, उष्ण, दाहक, अनीति-उपार्जित, गन्दे, मनुष्यों द्वारा बनाए हुए, तिरस्कारपूर्वक दिए हुए भोजन से जितना बचा जा सके, उतना ही अच्छा है।

(२८) व्यवहार जितना ही प्राकृतिक, धर्मसंगत, सरल एवं सात्विक् रह सके, उतना ही उत्तम है। फैशनपरस्ती, रात्रि में अधिक जागना, दिन में सोना, सिनेमा, नाच-रंग अधिक देखना, परनिन्दा, छिद्रान्वेषण, कलह, दुराचार, ईर्ष्या, निष्ठुरता, आलस्य, प्रमाद, मद, मात्सर्य से जितना बचा जा सके, बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

(२९) यों ब्रह्मचर्य तो सदा ही उत्तम है, पर गायत्री अनुष्ठान के दिनों में विशेष आवश्यक होता है।

अनुष्ठान के दिनों में कुछ विशेष नियमों का पालन करना पड़ता है, जो इस प्रकार हैं- (१)ठोड़ी के सिवाय सिर के बाल न कटाएँ, ठोड़ी के बाल अपने हाथ से ही बनाएँ। (२)चारपाई पर न सोएँ, तख्त या जमीन पर सोना चाहिए। (३) उन दिनों अधिक दूर नंगे पैर न फिरें। जहाँ चाम का जूता पहन कर नहीं जा सकते, वहाँ खड़ाऊँ का उपयोग करना चाहिए। (४) इन दिनों एक समय अन्नाहार, एक समय फलाहार लेना चाहिए। (५)अपने शरीर और वस्त्रों से दूसरों का स्पर्श कम होने दें।

(३०) एकान्त में जप करते समय माला खुले रूप में जपनी चाहिए। जहाँ बहुत आदमियों की दृष्टि पड़ती हो, वहाँ कपड़े से ढक लेना चाहिए या गौमुखी में हाथ डाल लेना चाहिए।

(३१) साधना के उपरान्त पूजा से बचे हुए अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, फूल, जल, दीपक की बत्ती, हवन की भस्म आदि को यों ही जहाँ-तहाँ ऐसी जगह नहीं फेंक देना चाहिए, जहाँ पर पैरों से कुचलती फिरे। किसी तीर्थ, नदी, जलाशय, देव मंदिर, कपास, जौ, चावल का खेत आदि स्थानों पर विसर्जन करना चाहिए। चावल चिड़ियों के लिए डाल देना चाहिए। नैवेद्य आदि बालकों को बाँट देना चाहिए। जल को सूर्य के सम्मुख अर्घ्य चढ़ा देना चाहिए।

(३२) वेद मंत्रों का सस्वर उच्चारण करना उचित होता है। पर सब लोग यथाविधि सस्वर गायत्री का उच्चारण नहीं कर सकते। इसलिए जप इस प्रकार करना चाहिए कि कण्ठ से ध्वनि होती रहे, ओष्ठ हिलते रहें, पर पास में बैठा हुआ मनुष्य भी स्पष्ट रूप से मंत्र को न सुन सके। इस प्रकार किया हुआ जप स्वर बन्धनों से मुक्त होता है।

(३३) गायत्री साधना माता की चरण वन्दना के समान है, यह कभी निष्फल नहीं होती। उलटा परिणाम भी नहीं होता, भूल हो जाने से अनिष्ट होने की कोई आशङ्का नहीं। इसलिए निर्भय और प्रसन्नचित्त से उपासना करनी चाहिए। अन्य मंत्र अविधिपूर्वक जपे जाने से अनिष्ट करते हैं, पर गायत्री में यह बात नहीं है। वह सर्वसुलभ, अत्यन्त सुगम और सब प्रकार सुसाध्य है। हाँ, तान्त्रिक विधि से की गई उपासना पूर्ण विधि-विधान के साथ होनी चाहिए, उसमें अन्तर पड़ना हानिकारक है।

(३४) जैसे मिठाई को अकेले-अकेले ही चुपचाप खा लेना और समीपवर्ती लोगों को उसे न चखाना बुरा है। वैसे ही गायत्री साधना को स्वयं तो करते रहना, पर अन्य प्रियजनों, मित्रों, कुटुम्बियों को उसके लिए प्रोत्साहित न करना एक बहुत बड़ी बुराई तथा भूल है। इस बुराई से बचने के लिए हर साधक को चाहिए कि अधिक से अधिक लोगों को इस दिशा में प्रोत्साहित करें।

(३५) माला जपते समय सुमेरु (माला के आरम्भ का सबसे बड़ा दाना) का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। एक माला पूरी करके उसे मस्तक

तथा नेत्रों से लगाकर पीछे की तरफ उल्टा ही वापस कर लेना चाहिए। इस प्रकार माला पूरी होने पर हर बार उल्टा कर ही नया आरम्भ करना चाहिए।

(३६) अपनी पूजा सामग्री ऐसी जगह रखनी चाहिए, जिसे अन्य लोग अधिक स्पर्श न करें।

दैनिक गायत्री साधना के पाँच अंग हैं। (१) ब्रह्मसंध्या (२) पूजन (३)जप (४) हवन (५) चिन्तन-ध्यान।

इनमें से पाँचों बन पड़े तो पाँचों करें। जिनसे न बन पड़े वे सुविधानुसार इनमें से जितने विधान पूरे कर सकें, करते रहें।

ब्रह्म-संध्या

संध्यावन्दन की अनेक विधियाँ हिन्दू धर्म में प्रचलित हैं। उनमें सबसे सरल, सुगम, सीधी एवं अत्यधिक प्रभावशाली उपासना गायत्री मंत्र द्वारा होने वाली ब्रह्मसंध्या है। इसमें केवल एक ही गायत्री मंत्र याद करना होता है। अन्य संध्या विधियों की भाँति अनेक मंत्र याद करने और अनेक प्रकार के विधि-विधान याद रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

सूर्योदय या सूर्यास्त समय को संध्याकाल कहते हैं, यही समय संध्यावन्दन का है। सुविधानुसार इससे थोड़ा आगे-पीछे भी कर सकते हैं। त्रिकाल संध्या करने वालों के लिए तीसरा समय मध्याह्नकाल का है। नित्यकर्म से निवृत्त होकर शरीर को स्वच्छ करके संध्या पर बैठना चाहिए, उस समय देह पर कम से कम वस्त्र होने चाहिए। खुली हवा का एकान्त स्थान मिल सके, तो सबसे अच्छा, अन्यथा घर के ऐसे भाग को चुनना ही चाहिए, जहाँ कम खटपट हो और शुद्धता रहती हो। कुश का आसन, चटाई, टाट या चौकी आदि बिछाकर, पालथी मारकर मेरुदण्ड सीधा रखते हुए संध्या के लिए बैठना चाहिए। प्रातःकाल पूर्व की ओर सायंकाल पश्चिम की ओर मुँह करके बैठना चाहिए। पास में जल का भरा पात्र रख लेना चाहिए। संध्या के पाँच कर्म हैं, उनका वर्णन किया जाता है।

(१) पवित्रीकरण

देवपूजा के लिए स्वयं को भी देव बनना पड़ता है। सजातीय वस्तु ही परस्पर मिलती हैं। अपवित्र प्राणी, पवित्र देवताओं का स्नेह, सान्निध्य नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिए पूजा के समय अपने शरीर, मन और अन्तःकरण को पवित्र होने की भावना रखकर ही पूजा पर बैठना चाहिए।

इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए पवित्रीकरण किया जाता है। बाँई हथेली पर जल रखकर उसे दाहिने हाथ से ढुका जाए। तदुपरान्त उस जल को सिर से ऊपर ले जाकर शरीर पर छिड़क लिया जाए।

जल छिड़कते समय यह भावना की जाए कि अपना शरीर, मन और अन्तःकरण पाप-तापों से, कषाय-कल्मषों से मुक्त होकर पूर्णतया निर्मल हो गया है। कम से कम पूजा काल में तो पवित्र रहेगा ही; ताकि पवित्र परमात्मा के मिलन का अधिकारी बन सके।

मंत्रशक्ति से अभिमंत्रित जल, इस प्रकार की पवित्रीकरण क्रिया के साथ प्रयुक्त किये जाने पर सचमुच उपासक में पवित्रता का संचार करता है और उससे अन्तःकरण में एक शान्ति, शीतलता एवं भारहीनता अनुभव होती है।

(२) आचमन

जल भरे हुए पात्र में से दाहिने हाथ की हथेली पर जल लेकर उसका तीन बार आचमन करना चाहिए। बाएँ हाथ से पात्र को उठाकर हथेली में थोड़ा गड्ढा करके उसमें जल भरें और गायत्री मंत्र पढ़ें, मंत्र पूरा होने पर उस जल को पी लें। दूसरी बार फिर उसी प्रकार हथेली में जल भरें और मंत्र पढ़कर उसे पी लें। तीसरी बार भी इसी प्रकार करें। तीन बार आचमन करने के उपरान्त दाहिने हाथ को पानी से धो डालें। कन्धे पर रखे हुए अँगोछे से मुँह-हाथ पोंछ लें, जिससे हथेली, होठ और मूँछ आदि पर आचमन किए उच्छिष्ट जल का अंश लगा न रह जाए।

आचमन त्रिगुणमयी माता की त्रिविध शक्तियों को अपने अन्दर धारण करने के लिए है। प्रथम आचमन के साथ सतोगुणी, विश्वव्यापी,

सूक्ष्म-शक्ति ह्रीं शक्ति का ध्यान करते हैं और भावना करते हैं कि विद्युत् सरीखी सूक्ष्म नीली किरणें मेरे मंत्रोच्चारण के साथ-साथ सब ओर से उस जल में प्रवेश कर रही हैं और यह उस शक्ति से ओत-प्रोत हो रहा है। आचमन करने के साथ जल में सम्मिश्रित सब शक्तियाँ अपने अन्दर प्रवेश करने की भावना करनी चाहिए कि मेरे अन्दर सतोगुण का पर्याप्त मात्रा में प्रवेश हुआ है। इसी प्रकार दूसरे आचमन के साथ रजोगुणी श्रीं शक्ति की पीतवर्ण किरणों को जल में आकर्षित होने और आचमन के साथ शरीर में प्रवेश होने की भावना करनी चाहिए। तीसरे आचमन में तमोगुणी क्लीं भावना की रक्तवर्ण शक्तियों को अपने में धारण होने का भाव जाग्रत् होना चाहिए।

जैसे बालक माता का दूध पीकर उसके गुणों और शक्तियों को अपने में धारण करता है और परिपुष्ट होता है, उसी प्रकार साधक मंत्र बल से आचमन के जल को गायत्री-माता के दूध के समान बना देता है और उसका पान करके आत्मबल को बढ़ाता है। इन आचमनों से उसे विविध ह्रीं, श्रीं, क्लीं, शक्ति से युक्त आत्मबल मिलता है, तदनुसार उसको आत्मिक-पवित्रता, सांसारिक समृद्धि को सुदृढ़ बनाने वाली शक्ति भी प्राप्त होती है।

(३) शिखा-वन्दन

आचमन के पश्चात् शिखा को जल से गीला करके उसकी अभिवन्दना करनी चाहिए, उसमें ऐसी गाँठ लगानी चाहिए, कि सिरा नीचे से खुल जाए। इसे आधी गाँठ कहते हैं। गाँठ लगाते समय गायत्री मंत्र का उच्चारण करते जाना चाहिए।

शिखा, मस्तिष्क के केन्द्र बिन्दु पर स्थापित है। जैसे रेडियो की ध्वनि-विस्तारक केन्द्र में ऊँचे खम्भे लगे होते हैं और वहाँ से ब्राडकास्ट की तरंगें चारों ओर फेंकी जाती हैं, उसी प्रकार हमारे मस्तिष्क का विद्युत् भण्डार शिखा स्थान पर है, इस केन्द्र में से हमारे विचार, संकल्प और शक्ति परमाणु हर घड़ी बाहर निकल-निकल कर आकाश में दौड़ते रहते हैं। इस प्रवाह से शक्ति का अनावश्यक व्यय होता है और अपना कोष घटता है।

इसका प्रतिरोध करने के लिए शिखा में गाँठ लगा देते हैं। सदा गाँठ लगाये रहने से अपनी मानसिक शक्तियों का बहुत-सा अपव्यय बच जाता है।

संध्या करते समय विशेष रूप से गाँठ लगाने का प्रयोजन यह है कि रात्रि को सोते समय गाँठ प्रायः शिथिल हो जाती है या खुल जाती है। फिर स्नान करते समय केश-शुद्धि के लिए शिखा को खोलना पड़ता है। संध्या करते समय अनेक सूक्ष्म-तत्त्व आकर्षित होकर अपने अन्दर स्थित होते हैं, वे सब मस्तिष्क केन्द्र से निकलकर बाहर न उड़ जायें और कहीं अपने को साधना के लाभ से वंचित न रहना पड़े, इसलिए शिखा में गाँठ लगा दी जाती है। फुटबाल के भीतर भरी हुई वायु बाहर नहीं निकलने पाती। साइकिल के पहियों में भरी हुई हवा को रोकने के लिए भी एक वालट्यूब नामक रबड़ की नली लगी होती है, जिसमें होकर हवा भीतर तो जा सकती है, पर बाहर नहीं आ सकती। गाँठ लगी हुई शिखा से भी यही प्रयोजन पूरा होता है। वह बाहर के विचार और शक्ति समूह को ग्रहण तो करती है, पर भीतर के तत्त्व का अनावश्यक व्यय नहीं होने देती।

आचमन से पूर्व शिखा वन्दन इसलिए नहीं होता, क्योंकि उस समय त्रिविध शक्ति का आकर्षण जहाँ जल द्वारा होता है, वहाँ मस्तिष्क के मध्य केन्द्र द्वारा भी होता है। इस प्रकार शिखा खुली रहने से दुहरा लाभ होता है। तत्पश्चात् उसे बाँध लिया जाता है।

(४) प्राणायाम

संध्या का अगला अङ्ग है प्राणायाम अथवा प्राणाकर्षण। गायत्री की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए पूर्व पृष्ठों में यह बताया जा चुका है कि सृष्टि दो प्रकार की है- (१) जड़ अर्थात् परमाणुमयी (२) चैतन्य अर्थात् प्राणमयी। निखिल विश्व में जिस प्रकार परमाणुओं के संयोग-वियोग से विविध प्रकार के दृश्य उपस्थित होते हैं, उसी प्रकार चैतन्य प्राण-सत्ता की हलचलें, चैतन्य जगत् में विविध घटनाएँ घटित होती हैं। जैसे वायु अपने क्षेत्र में सर्वत्र भरी हुई है, उसी प्रकार से वायु से भी असंख्य गुना सूक्ष्म चैतन्य प्राणतत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। इस तत्त्व की न्यूनाधिकता से हमारा मानस क्षेत्र बलवान् तथा

निर्बल होता है। इस प्राण तत्त्व को जो जितनी मात्रा में अधिक आकर्षित कर लेता है, धारण कर लेता है, उसकी आन्तरिक स्थिति उतनी ही बलवान् हो जाती है। आत्म-तेज, शूरता, दृढ़ता, पुरुषार्थ, विवेकशीलता, महानता, सहनशीलता और स्थिरता सरीखे गुण प्राणशक्ति के परिचायक हैं। जिनमें प्राण कम होता है, वे शरीर से स्थूल भले ही हों, पर डरपोक, दब्बू, झेंपने वाले, कायर, अस्थिरमति, संकीर्ण, अनुदार, स्वार्थी, अपराधी मनोवृत्ति के, घबराने वाले, अधीर, तुच्छ, नीच विचारों से ग्रस्त एवं चंचल मनोवृत्ति के होते हैं। इन दुर्गुणों के होते हुए कोई व्यक्ति महान् नहीं बन सकता। इसलिए साधक को प्राण शक्ति अधिक मात्रा में अपने अन्दर धारण करने की आवश्यकता होती है। जिस क्रिया द्वारा विश्वव्यापी प्राणतत्त्व में से खींचकर अधिक मात्रा में प्राणशक्ति को हम अपने अन्दर धारण करते हैं, उसे प्राणायाम कहा जाता है।

प्राणायाम के समय मेरुदण्ड को विशेष रूप से सावधान होकर सीधा कर लीजिए, क्योंकि मेरुदण्ड में स्थिर इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों द्वारा प्राणशक्ति का आवागमन होता है और यदि रीढ़ टेढ़ी झुकी रहे, तो मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी तक प्राण की धारा निर्बाध गति से न पहुँच सकेगी। अतः प्राणायाम का वास्तविक लाभ न मिल सकेगा।

प्राणायाम के चार भाग हैं- (१) पूरक (२)अन्तः-कुम्भक (३) रेचक (४) बाह्य-कुम्भक। वायु को भीतर खींचने का नाम पूरक, वायु को भीतर रोके रहने के नाम को अन्तः-कुम्भक, वायु को बाहर निकालने का नाम रेचक और बिना साँस के रहने को- वायु बाहर रोके रहने को बाह्य-कुम्भक कहते हैं। इन चारों के लिए गायत्री मंत्र के चार भागों की नियुक्ति की गई है। पूरक के साथ 'ॐ भूर्भुवः स्वः', अन्तः कुम्भक के साथ 'तत्सवितुर्वरेण्यं', रेचक के साथ 'भर्गो देवस्य धीमहि', बाह्य कुम्भक के साथ 'धियो यो नः प्रचोदयात्', मंत्र जप होना चाहिए।

(अ) स्वस्थ चित्त से बैठिए, मुख को बंद कर दीजिये। नेत्रों को बंद या अधखुले रखिए। अब श्वास को धीरे-धीरे नासिका द्वारा भीतर खींचना

आरम्भ कीजिए और 'ॐ भूर्भुवः स्वः' इस मंत्र भाग का मन ही मन उच्चारण करते चलिए और भावना कीजिए कि विश्वव्यापी, दुःखनाशक, सुख स्वरूप, ब्रह्म चैतन्य, प्राणशक्ति को नासिका द्वारा आकर्षित कर रहा हूँ। इस भावना और मंत्र के साथ धीरे-धीरे श्वास खीचिए और जितनी अधिक वायु भीतर भर सकें भर लीजिए।

(ब) अब वायु को भीतर रोकिये और 'तत्सवितुर्वरेण्यं' इस मंत्र भाग का जप कीजिए, साथ ही भावना कीजिए कि नासिका द्वारा खींचा हुआ वह प्राण श्रेष्ठ है। सूर्य के समान तेजस्वी है, उसका तेज मेरे अंग-प्रत्यंग में रोम-रोम में भरा जा रहा है। इस भावना के साथ पूरक की अपेक्षा आधे समय तक वायु को भीतर रोके रखें।

(स) अब नासिका द्वारा वायु धीरे-धीरे बाहर निकालना आरम्भ कीजिए और 'भर्गो देवस्य धीमहि' इस मंत्र भाग को जपिए तथा भावना कीजिए कि यह दिव्य प्राण मेरे पापों का नाश करता हुआ विदा हो रहा है। वायु को निकालने में प्रायः उतना ही समय लगाना चाहिए जितना कि वायु खींचने में लगाया था।

(द) जब भीतर की सब वायु बाहर निकल जाए, तो जितनी देर वायु को भीतर रोक रखा था, उतनी देर बाहर रोक रखें, अर्थात् बिना श्वास लिए रहें और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' इस मंत्र भाग को जपते रहें। साथ ही भावना करें कि भगवती वेदमाता आद्यशक्ति गायत्री हमारी बुद्धि को जाग्रत् कर रही हैं।

(५) न्यास

न्यास कहते हैं- धारण करने को। अंग-प्रत्यंगों में गायत्री की सतोगुणी शक्ति को धारण करने, स्थापित करने, भरने, ओत-प्रोत करने के लिए न्यास किया जाता है। गायत्री के प्रत्येक शब्द का महत्त्वपूर्ण मर्म-स्थलों से घनिष्ठ संबंध है। जैसे सितार के अमुक भाग में, अमुक आघात के साथ उँगली का आघात लगाने से अमुक ध्वनि के स्वर निकलते हैं, उसी प्रकार शरीर-वीणा को संध्याकाल में उँगलियों के सहारे दिव्य भाव से झंकृत किया जाता है।

ऐसा माना जाता है कि स्वभावतः अपवित्र रहने वाले शरीर से दैवी सान्निध्य ठीक प्रकार से नहीं हो सकता, इसलिए उसके प्रमुख स्थानों में दैवी पवित्रता स्थापित करके, उसमें इतनी मात्रा दैवी तत्त्वों की स्थापित कर ली जाती है कि वह दैवी-साधना का अधिकारी बन जाए।

बाँए हाथ की हथेली पर जल रखना चाहिए। दाहिने हाथ की पाँचों उँगलियाँ इकट्ठी कर उस जल में डुबाना चाहिए और क्रमशः गायत्री मंत्र का उच्चारण करते हुए उस जल में भीगी उँगलियों को (१)मुख, (२)नासिका, (३)नेत्र, (४)कान, (५)भुजाएँ, (६) जंघाएँ, (७)समस्त शरीर से स्पर्श करना चाहिए। पहले बाँई और फिर दाहिनी ओर का क्रम ठीक रहे।

शरीर के इन समस्त प्रमुख अंगों में, इन्द्रिय में अपवित्रता न रहे, इनके द्वारा कुमार्ग को न अपनाया जाए, अविवेकपूर्ण आचरण न हो इस प्रतिरोध के लिए न्यास किया जाता है। इन अंगों में भगवती की विशिष्ट शक्तियाँ निवास करती हैं।, उन्हें उपरोक्त न्यास द्वारा जाग्रत् किया जाता है। जाग्रत् हुई मातृकाएँ अपने-अपने स्थान की रक्षा करती हैं, अवांछनीय तत्त्वों का संहार करती हैं। इस प्रकार साधक का अन्तः प्रदेश ब्राह्मी-शक्ति का सुदृढ़ दुर्ग बन जाता है।

यह पाँचों क्रियाएँ गायत्री मंत्र के उच्चारण के साथ-साथ सम्पन्न की जा सकती हैं। एक ही मंत्र इन पाँचों क्रियाओं को काम दे सकता है। वैसे इन पाँचों क्रियाओं के अलग-अलग मंत्र भी हैं। जिन्हें सुविधा हो, जो इन मंत्रों को याद कर सकते हों, वे उन पाँचों के लिए अलग-अलग मंत्रों का भी प्रयोग कर सकते हैं। वे मंत्र नीचे दिये जाते हैं।

(१) पवित्रीकरण-

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥
ॐ पुनातु पुण्डरीकाक्षः, पुनातु पुण्डरीकाक्षः, पुनातु ॥

(२) आचमन-

ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१ ॥

ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥

ॐ सत्यं यशः श्रीर्मयि, श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

(३) शिखा-वन्दन-

ॐ चिद्रूपिणि महामाये दिव्य तेजः समन्विते।

तिष्ठ देवि शिखा मध्ये तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे॥

(४) प्राणायाम मंत्र-

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः, ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम्। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वः ॐ॥

(५) न्यास -

ॐ वाङ् मे आस्येऽस्तु । (मुख को)

ॐ नसोर्मेप्राणोऽस्तु । (नासिका के दोनों छिद्रों को)

ॐ अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु । (दोनों नेत्रों को)

ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। (दोनों कानों को)

ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु। (दोनों बाहों को)

ॐ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु। (दोनों जंघाओं को)

ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि, तनूस्तन्वा मे सह सन्तु।

(समस्त शरीर पर जल छिड़कें)

(२) दैनिक पूजा पद्धति

संध्या वन्दन के उपरान्त गायत्री पूजा करनी चाहिए। पूजा के लिए एक सुन्दर चौकी स्थापित करनी चाहिए। पीले वस्त्र से वह ढकी रहे। उस पर पूजा उपकरण धूपदानी, अर्घ, शंख, गङ्गाजली, जल-कलश, आरती, उपकरण, दीपक आदि वस्तुएँ सुसज्जित रहें। इस पर गायत्री माता का शीशे से मढ़ा सुन्दर चित्र स्थापित किया जाए। जो लोग साकार पूजा से चिढ़ते हों, उन्हें गायत्री मंत्र के अक्षरों का ऐसा चिह्न जिसके मध्य में सूर्य हो, स्थापित कर लेना चाहिए। दीपक की अग्नि शिखा को भी माता का प्रतीक माना जा सकता है।

नित्य पूजा उपकरण माँज-धोकर काम में लाने चाहिए। सबसे प्रथम माता का आवाहन करना चाहिए। भावना रखनी चाहिए कि इस पूजा के अवसर पर विश्वव्यापिनी गायत्री महाशक्ति का यहाँ आवाहन किया गया और वे कृपापूर्वक यहाँ पधारीं। आवाहन के लिए गायत्री मंत्र का उच्चारण किया जा सकता है। वैसे इसका एक दूसरा मंत्र भी है-

ॐ आयातु वरदे देवि! त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि।
गायत्रिच्छन्दसां मातः ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते॥

जिन्हें जैसी सुविधा हो, उपरोक्त मंत्र से अथवा गायत्री मंत्र से आवाहन कर लें।

आवाहन की हुई गायत्री माता का पूजन करना चाहिए। पूजन में साधारणतया (१) जल (२) धूपबत्ती (३) दीपक (४) अक्षत (५) चन्दन (६) पुष्प (७) नैवेद्य। इन सात वस्तुओं से काम चल सकता है। एक छोटी तश्तरी चित्र के सामने रखकर उसमें यह वस्तुएँ गायत्री मंत्र बोलते हुए समर्पित की जानी चाहिए। तत्पश्चात् उन्हें प्रणाम करना चाहिए। यह सामान्य पूजन हुआ।

जिन्हें सुविधा हो, वे सोलह वस्तुओं से षोडशोपचार पूजन श्री सूक्त के सोलह मंत्रों से कर सकते हैं। सोलह वस्तुओं में से जो वस्तु न हों, उनके स्थान पर जल या अक्षत समर्पित किये जा सकते हैं।

श्री सूक्त के सोलह मंत्र तथा उन्हें किस प्रयोजन के लिए प्रयोग करना है, यह क्रम इस प्रकार है-

श्री सूक्त से षोडशोपचार

लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा इसी तरह अन्य देवियों का षोडशोपचार पूजन श्री सूक्त से किया जाता है। श्री सूक्त के प्रत्येक मंत्र उच्चारण के साथ उससे संबंधित वस्तुएँ देवी को समर्पित करनी चाहिए।

१- आवाहन

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

२- आसन

ॐ तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥

३- पाद्य

ॐ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥

४- अर्घ्य

ॐ कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

५- आचमन

ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्ये ऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥

६- स्नान

ॐ आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथबिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥

७- वस्त्र

ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥

८- यज्ञोपवीत

ॐ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥

९- गन्ध

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

१०- पुष्प

ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥

११- धूप

ॐ कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥

१२- दीप

ॐ आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥

१३- नैवेद्य

ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरणमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

१४- ताम्बूल-पूगीफल

ॐ आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरणमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

१५- दक्षिणा

ॐ तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम्॥

१६- पुष्पाञ्जलि

ॐ यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पंचदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्॥

पूजन के उपरान्त जप प्रारम्भ कर देना चाहिए। कण्ठ, ओष्ठ, जिह्वा चलते रहें, पर उच्चारण इतना मंद हो कि पास बैठा हुआ व्यक्ति भी उसे सुन न सके। जप आरम्भ करने से पूर्व माला का पूजन करना चाहिए। एक गायत्री मंत्र उच्चारण करते हुए, माला को मस्तक पर लगाना-यही माला पूजन है।

जप में कम से कम १०८ मंत्र (एक माला) तो होनी ही चाहिए। अधिक समय हो तो ३,५,७,९,११ आदि विषम संख्या में मालाएँ जपनी चाहिए। माला न होने पर उँगलियों के पोरवों से भी गणना की जा सकती है। नियत समय पर, नियत संख्या में जप करना उपासना को व्यवस्थित एवं सफल बनाने का मूल मंत्र है।

जप करते हुए वेदमाता गायत्री का इस प्रकार ध्यान रखना चाहिए मानों वे हमारे हृदय सिंहासन पर बैठी अपनी शक्तिपूर्ण किरणों को चारों ओर बिखेर रही हैं और उससे हमारा अन्तःप्रदेश आलोकित हो रहा है। उस समय नेत्र अर्धोन्मीलित या बंद रहें। अपने हृदयाकाश में बाह्य आकाश के समान ही एक ही विस्तृत शून्य लोक की भावना करके उसमें सूर्य के समान ज्ञानी, तेजस्वी ज्योति की कल्पना भी करते रहना चाहिए। यह ज्योति और प्रकाश गायत्री माता की ज्ञान शक्ति का ही होता है।, जिसका अनुभव साधक को कुछ समय की साधना के पश्चात् स्पष्ट रीति से होने लगता है। इस प्रकार की साधना के फलस्वरूप श्वेत रंग की ज्योति में विभिन्न रंगों के दर्शन होते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे वह आत्मोन्नति करता हुआ निश्चित रूप से अध्यात्म के उच्च सोपान पर पहुँच जाता है।

जप समाप्त होने पर माता का विसर्जन करना चाहिए, विसर्जन के लिए प्रणाम करना चाहिए और गायत्री मंत्र बोलना चाहिए। विसर्जन का एक दूसरा मंत्र भी है। जो उसे याद कर सकें, वे उसका प्रयोग किया करें-

विसर्जन मंत्र-

ॐ उत्तमे शिखरे देवि! भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि! यथा सुखम्॥

विसर्जन के उपरान्त कलश रूप में स्थापित जल को सूर्य भगवान् के सम्मुख अर्घ्य रूप से चढ़ा देना चाहिए। इसके लिए गायत्री मंत्र का प्रयोग किया जाए। वैसे अर्घ्य का दूसरा मंत्र भी है-

ॐ सूर्यदेव सहस्त्रांशो तेजो राशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥

दैनिक पाठ

दैनिक पाठ में केवल (१) गायत्री चालीसा (२) गायत्री की आरती (३) गायत्री स्तवन इन तीन का प्रयोग उपयुक्त रहेगा। जिन्हें समय है या संस्कृत जानते हैं, उनके लिए गायत्री सहस्रनाम का पाठ भी उत्तम है। पर सामान्यतः नीचे दिये तीन स्तोत्र (१) गायत्री चालीसा (२)गायत्री आरती (३) गायत्री स्तवन यदि पाठ किये जा सकें तो भी पर्याप्त है।

दैनिक हवन

जिन्हें सुविधा हो नित्य हवन कर सकते हैं। गायत्री का हवन से घनिष्ठ संबंध है। हवन के साथ किया हुआ जप अधिक सफल होता है। इसलिए एक छोटा ताँबे का हवन कुण्ड बना लेना चाहिए। मिट्टी का पकाया हुआ कुण्ड भी इसके लिए बनाया जा सकता है।

हवन सामग्री में घी और शक्कर मिलाकर एक डिब्बे में रख लेनी चाहिए। कुण्ड के नाप की समिधाएँ काटकर एक थैले में रख ली जाएँ। हवन कार्य में बड़, पीपल, ढाक, गूलर, आम, छोंकर की समिधाएँ ही प्रयुक्त होती हैं।

जिन्हें जप के बाद हवन भी करना हो, उन्हें विसर्जन एवं सूर्यार्घ्य तब करना चाहिए, जब हवन-पाठ आदि सारे कृत्य समाप्त हो जाएँ।

हवन का पूरा विधान तो सामूहिक यज्ञ-विधान एवं गायत्री हवन पद्धति में है, पर बहुत देर में पूरा हो सकने वाला क्रिया-कलाप है। दैनिक हवन उससे संक्षिप्त है। उनका विधान इस प्रकार है।

(१) अग्नि स्थापना- कुण्ड या वेदी को शुद्ध करके उस पर समिधाएँ चुन लें, फिर अग्नि स्थापना के लिए चम्मच में कपूर या घी में भिगोई हुई रुई की बत्ती को जलाकर उन समिधाओं के बीच स्थापित करें। मंत्र-

ॐ भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे।
अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवांऽआसादयादिह॥
ॐ अग्नये नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि।

तदुपरान्त गन्ध, अक्षत-पुष्प आदि से अग्नि देवता की पूजा करें।

(२) अग्नि प्रदीपन- जब अग्नि समिधाओं में प्रवेश कर जाए, तब उसे पंखे से प्रज्वलित करें और यह मंत्र बोलें-

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टा पूर्ते स ७ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत॥

(३) समिधाधान- तत्पश्चात् निम्न चार मंत्रों से छोटी-छोटी चार समिधाएँ प्रत्येक मंत्र के उच्चारण के बाद क्रम से घी में डुबोकर अग्नि में डालें।

१. ॐ अयंत इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व। चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, अन्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम॥

२. ॐ समिधाऽग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये इदं न मम॥

३. ॐ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम॥

४. ॐ तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नये अंगिरसे इदं न मम॥

(५) जल प्रसेचन- तत्पश्चात् अंजलि (या आचमनी) में जल लेकर यज्ञ कुण्ड (वेदी) के चारों ओर छिड़काएँ। इसके मंत्र यह हैं-

ॐ अदितेऽनुमन्यस्व ॥ (इति पूर्वे)

ॐ अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ (इति पश्चिमे)

ॐ सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ (इति उत्तरे)

ॐ देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ (इति चतुर्दिक्षु)

(६) आज्याहुति होम- नीचे लिखी सात आहुतियाँ केवल घृत की दें और स्रुवा (घी होमने का चम्मच) से बचा हुआ घृत इदं न मम उच्चारण के साथ प्रणीता-जल भरी हुई कटोरी में हर आहुति के बाद टपकाते जाते हैं। यह टपकाया हुआ घृत अन्त में अवघ्राण के काम आता है।

१. ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदं न मम।

२. ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय इदं न मम।

३. ॐ अग्नये स्वाहा। इदं अग्नये इदं न मम।

४. ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदं न मम।

५. ॐ भूः स्वाहा। इदं अग्नये इदं न मम।

६. ॐ भुवः स्वाहा। इदं वायवे इदं न मम।

७. ॐ स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय इदं न मम।

(७) गायत्री मंत्र की आहुतियाँ- इसके पश्चात् गायत्री मंत्र से जितनी आहुतियाँ देनी हों, घी-शक्कर मिली हवन सामग्री से देनी चाहिए। गायत्री मंत्र-

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा। इदं गायत्र्यै इदं न मम।

(८) स्विष्टकृत होम- अभीष्ट संख्या में गायत्री मंत्र से आहुतियाँ देने के पश्चात् मिष्टान्न, खीर, हलुवा आदि पदार्थों की एक आहुति देनी चाहिए-

ॐ यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वान्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां, समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदं अग्नये स्विष्टकृते इदं न मम।

(९) पूर्णाहुति- इसके बाद स्रुचि-चम्मच में घृत समेत सुपारी रख कर पूर्णाहुति दें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ पूर्णादर्वि परापत, सुपूर्णा पुनरापत।
वस्नेव विक्रीणा वहा, इषमूर्ज ७३ शतक्रतो स्वाहा॥
ॐ सर्वं वै पूर्णं ७३ स्वाहा।

(१०) वसोर्धारा- चम्मच में घी भरकर धीरे-धीरे धार बाँधकर छोड़ें।

ॐ वसोः पवित्रमसि शतधारं, वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः, पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः स्वाहा॥

(११) आरती- तत्पश्चात् निम्न मंत्रों को पढ़ते हुए आरती उतारें-

ॐ यं ब्रह्मवेदान्तविदो वदन्ति, परं प्रधानं पुरुषं तथान्ये।
विश्वोद्‍गतेः कारणमीश्वरं वा, तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय॥
ॐ यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः, स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः,
वेदैः सांङ्गपदक्रमोपनिषदैः, गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थित-तद्‍गतेन मनसा, पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः, देवाय तस्मै नमः॥

(१२) घृत अवघ्राण- प्रणीता में इदन्नमम के साथ टपकाये हुए घृत को हथेलियों पर लगाकर अग्नि पर सेकें और उसे सूघें तथा मुख, नेत्र, कर्ण, आदि पर लगाएँ। मंत्र-

ॐ तनूपा अग्नेऽसि, तन्वं मे पाहि।
ॐ आयुर्दा अग्नेऽसि, आयुर्मे देहि।
ॐ वर्चोदा अग्नेऽसि, वर्चो मे देहि।
ॐ अग्ने यन्मे तन्वा, ऊनन्तन्म ऽआपृण॥
ॐ मेधां मे देवः, सविता आदधातु।
ॐ मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु॥
ॐ मेधां मे अश्विनौ, देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ।

(१३) भस्म धारण- स्प्य से यज्ञ भस्म लेकर अनामिका उँगली से निम्न मंत्रों द्वारा ललाट, ग्रीवा, दक्षिण बाहु मूल तथा हृदय पर लगाएँ।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः, इति ललाटे।
ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्, इति ग्रीवायाम्।
ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम्, इति दक्षिण बाहुमूले।
ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्, इति हृदि।

(१४) शान्तिपाठ- हाथ जोड़कर सबके कल्याण के लिए शान्तिपाठ करें।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ᳬ शान्तिः, पृथिवी शान्तिरापः, शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः, शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, सर्व ᳬ शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। सर्वारिष्ट-सुशान्तिर्भवतु।

गायत्री का अर्थ चिन्तन

गायत्री मंत्र का अर्थ इस प्रकार है-

ॐ (परमात्मा) भूः (प्राणस्वरूप) भुवः (दुःखनाशक) स्वः (सुखस्वरूप) तत् (उस) सवितुः (तेजस्वी) वरेण्यं (श्रेष्ठ) भर्गः (पापनाशक) देवस्य (दिव्य) धीमहि (धारण करें) धियो (बुद्धि) यः (जो) नः (हमारी) प्रचोदयात् (प्रेरित करे)।

गायत्री मंत्र का भावार्थ- "उस प्राण स्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।"

इस अर्थ का विचार करने से उसके अन्तर्गत तीन तथ्य प्रकट होते हैं। (१) ईश्वर के दिव्य गुणों का चिन्तन (२) ईश्वर को अपने अन्दर धारण करना। (३) सद्बुद्धि की प्रेरणा के लिए प्रार्थना करना। यह तीन ही बातें असाधारण महत्त्व की हैं।

(१) ईश्वर के प्राणवान्, दुःखरहित, आनन्दस्वरूप, तेजस्वी, श्रेष्ठ, पापरहित, देव गुण सम्पन्न स्वरूप का ध्यान करने का तात्पर्य यह है कि इन्हीं गुणों को हम अपने में लाएँ। अपने विचार और स्वभाव को ऐसा बनाएँ कि उपरोक्त विशेषताएँ हमारे व्यावहारिक जीवन में परिलक्षित होने लगें। इस प्रकार की विचारधारा, कार्य पद्धति एवं अनुभूति मनुष्य की आत्मिक और भौतिक स्थिति को दिन-दिन समुन्नत एवं श्रेष्ठतम बनाती चलती है।

(२) गायत्री मंत्र के दूसरे भाग में परमात्मा को अपने अन्दर धारण करने की प्रतिज्ञा है। ब्रह्म, उस दिव्य गुण सम्पन्न परमात्मा को अपने अन्दर धारण करने, रोम-रोम में बसा लेने, परमात्मा को संसार के कण-कण में व्याप्त देखने से मनुष्य को हर घड़ी ईश्वर दर्शन का आनन्द प्राप्त होता रहता है और वह अपने को ईश्वर के निकट स्वर्गीय स्थिति में ही रहना अनुभव करता है।

(३) मंत्र के तीसरे भाग में सद्बुद्धि का महत्त्व सर्वोपरि होने की मान्यता का प्रतिपादन है। भगवान् से यही प्रार्थना की गई है कि आप हमारी

बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित कर दीजिए, क्योंकि यह एक ऐसी महान् भगवत् कृपा है कि इसके प्राप्त होने पर अन्य सब सुख-सम्पदाएँ अपने आप प्राप्त हो जाती हैं।

इस मंत्र के प्रथम भाग में ईश्वरीय दिव्य गुणों को प्राप्त करने, दूसरे भाग में ईश्वरीय दृष्टिकोण धारण करने और तीसरे में बुद्धि को सन्मार्ग पर लगाने की प्रेरणा है। गायत्री की शिक्षा है कि अपनी बुद्धि को सात्विक् बनाओ, आदर्शों को ऊँचा रखो, उच्च दार्शनिक विचारधाराओं में रमण करो और तुच्छ तृष्णाओं एवं यातनाओं के लिए हमें नचाने वाली कुबुद्धि को लोक मानस में से बहिष्कृत कर दो। जैसे-जैसे कुबुद्धि का कल्मष दूर होगा, वैसे ही दिव्य गुण सम्पन्न परमात्मा के अंशों की अपने में वृद्धि होती जाएगी और उस अनुपात में लौकिक और पारलौकिक आनन्दों की अभिवृद्धि होती जाएगी।

गायत्री मंत्र के गर्भ में सन्निहित उपरोक्त तथ्य में ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों हैं। सद्गुणों का चिंतन ज्ञानयोग है। ब्रह्म की धारणा शक्ति-भक्ति योग है और बुद्धि की सात्त्विकता एवं अनासक्ति कर्मयोग है। वेदों में ज्ञान, कर्म और उपासना (भक्ति) ये तीन विषय हैं। गायत्री में भी बीज रूप से यह तीनों ही तथ्य सर्वांगपूर्ण ढंग से प्रतिपादित हैं।

इन भावनाओं का एकान्त में बैठकर नित्य अर्थ चिंतन करना चाहिए, यह ध्यान साधना मनन के लिए अतीव उपयोगी है। मनन के लिए तीन संकल्प नीचे दिये जाते हैं। इन संकल्पों के शब्दों को शान्त चित्त से स्थिर आसन पर बैठकर, नेत्र बंद रखकर, मन ही मन दुहराना चाहिए और कल्पना शक्ति की सहायता से इन संकल्पों का ध्यान चित्र मन:क्षेत्र में भली प्रकार अंकित करना चाहिए।

(१) परमात्मा का ही पवित्र अंश- मैं ईश्वर का राजकुमार, अविनाशी आत्मा हूँ। परमात्मा प्राण स्वरूप है, मैं भी अपने को प्राणवान् आत्मशक्ति सम्पन्न बनाऊँगा। ईश्वर आनन्द स्वरूप है- अपने जीवन को आनन्दमय बनाना तथा दूसरों के आनन्द की वृद्धि करना मेरा कर्त्तव्य है। इस हेतु

कठिनाई भरे मार्ग भी सहर्ष स्वीकार करूँगा। भगवान् तेजस्वी हैं मैं भी निर्भीक, साहसी, वीर, पुरुषार्थी और प्रतिभावान् बनूँगा। ब्रह्म श्रेष्ठ है- श्रेष्ठता, महानता, आदर्शवादिता एवं सिद्धान्तमय जीवन की नीति अपनाकर मैं भी श्रेष्ठ बनूँगा। वह जगदीश्वर निष्पाप है- मैं भी पापों से कुविचारों और कुकर्मों से बचकर रहूँगा। ईश्वर नित्य है- मैं भी अपने को दिव्य गुणों से सुसज्जित करूँगा। संसार को कुछ देते रहने की देव-नीति अपनाऊँगा। इसी मार्ग पर चलने पर मेरा मनुष्य जीवन सफल हो सकता है।

(२) उपरोक्त गुणों वाले परमात्मा को मैं अपने अंदर धारण करता हूँ, इस विश्व ब्रह्माण्ड के कण-कण में प्रभु समाये हुए हैं, वे मेरे चारों ओर भीतर-बाहर सर्वत्र फैले हुए हैं। मैं उन्हीं में रमण करूँगा, उन्हीं के साथ हँसूँगा, खेलूँगा। वे ही मेरे चिर-सहचर हैं। लोभ, मोह, वासना और तृष्णा का प्रलोभन दिखाकर पतन के गहरे गर्त में धकेल देने वाली कुबुद्धि से, माया से बचकर अपने को अन्तर्यामी परमात्मा की शरण में सौंपता हूँ। उन्हें ही अपने हृदयासव पर अवस्थित करता हूँ। अब वे मेरे हैं और मैं केवल उन्हीं का हूँ। ईश्वरीय आदर्शों का पालन करना और विश्व-परमात्मा की सेवा करना ही अब मेरा लक्ष्य रहेगा।

(३) सद्बुद्धि से बढ़कर और कोई दैवी वरदान नहीं। इस दिव्य सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए घोर तप करूँगा। आत्म-चिन्तन करके अपने अन्तःकरण चतुष्टय में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार में छिपकर बैठी हुई कुबुद्धि को बारीकी के साथ ढूँढूँगा और उसे बहिष्कृत करने में कोई कसर न रहने दूँगा। अपनी आदतों, मान्यताओं, भावनाओं, विचारधाराओं में जहाँ भी कुबुद्धि पाऊँगा, वहीं से हटाऊँगा, असत्य को त्यागने और सत्य को ग्रहण करने में रत्तीभर भी दुराग्रह न करूँगा। अपनी भावनाओं, विचारों और स्वभावों की सफाई करना, सड़े-गले, कूड़े-कचरे को हटाकर सत्य, शिव, सुन्दर भावनाओं से अपनी मनोभूमि को सजाना अब मेरी प्रधान पूजा-पद्धति होगी। इसी पूजा-पद्धति से प्रसन्न होकर भगवान् मेरे अन्तःकरण में निवास करेंगे तब मैं उनकी कृपा से जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होऊँगा।

इन संकल्पों में अपनी रुचि के अनुसार शब्दों का हेर-फेर किया जा सकता है। पर भाव यही होने चाहिए। नित्यप्रति शान्त चित्त से भावपूर्वक इन संकल्पों का देर तक अपने हृदय में स्थान दिया जाये, तो गायत्री के मंत्रार्थ की सच्ची अनुभूति हो सकती है। उस अनुभूति से मनुष्य दिन-रात आध्यात्मिक मार्ग में ऊँचा उठ सकता है।

गायत्री मंत्र लेखन

शास्त्रों में कहा गया है कि जप की अपेक्षा मंत्र लेखन का पुण्य सौगुना अधिक है। इसका कारण यह है कि जप में केवल जिह्वा और हाथ की उँगलियाँ ही काम करती हैं। पर मंत्र लेखन में चित्त की समस्त वृत्तियाँ एक साधना की सफलता के लिए संलग्न रहती हैं।

गायत्री मंत्र लेखन के नियम बहुत सरल हैं, इनमें किसी प्रकार का कोई बंधन या प्रतिबंध नहीं है। कोई भी द्विज, बाल, वृद्ध, स्त्री-पुरुष इस पुनीत साधना को कर सकता है। स्कूली साइज की कापी पर स्याही से शुद्धतापूर्वक अपनी सुविधा के समय में मंत्र लिखे जा सकते हैं। कम से कम २४०० मंत्र लिखने चाहिए। अधिक कितने ही लिखे जा सकते हैं। प्रतिदिन नियत समय और नियत संख्या में लेखन कार्य नियमित रूप से किया जाए, तो अधिक उत्तम है। ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। यही शुद्ध मंत्र लिखना चाहिए।

गायत्री मंत्र लेखन किसी भी कॉपी या रजिस्टर पर किया जा सकता है। विशेष रूप से गायत्री मंत्र लेखन की पुस्तिकाएँ गायत्री तपोभूमि मथुरा एवं शान्तिकुञ्ज हरिद्वार से उपलब्ध की जा सकती है। इनमें २४०० मंत्र लिखकर २४००० गायत्री मंत्र जप के समतुल्य पुण्य प्राप्त किया जा सकता है।

मंत्र लेखन सुन्दर लिपि में करने का प्रयास करना चाहिए। मंत्र लेखन की पुस्तिकाएँ भर जाएँ उन्हें पूजा स्थली जैसी पवित्र जगह पर स्थापित करना चाहिए। गायत्री तपोभूमि मथुरा, शान्तिकुञ्ज अथवा किसी गायत्री शक्तिपीठ पर, जहाँ उनको स्थापित करके उनकी पूजा आरती की

व्यवस्था हो, वहीं उन्हें पहुँचा देना चाहिए। ये पुस्तिकाएँ साधक की तप साधना की जीवन्त प्रतिमाएँ होती हैं। इनका आभा मण्डल हजारों साधकों को प्रेरणा देने में समर्थ होता है। माता के चरणों में समर्पित मंत्र लेखन-श्रद्धाञ्जलि साधकों के लिए लोक और परलोक में सदैव सत्परिणाम उत्पन्न करती है।

गायत्री के सिद्धपीठ

शान्तिकुञ्ज हरिद्वार एवं गायत्री तपोभूमि मथुरा इस युग में गायत्री महाविद्या के सिद्धपीठों के रूप में स्थापित हैं। गायत्री तपोभूमि की स्थापना महर्षि दुर्वासा की तपस्थली पर तथा शान्तिकुञ्ज की स्थापना सप्तऋषि क्षेत्र में महर्षि विश्वामित्र की तपस्थली पर की गयी है। गायत्री साधना को फलित करने-प्रभावपूर्ण बनाने के लिए इन सिद्धपीठों का वातावरण बहुत लाभकारी सिद्ध होता है।

शान्तिकुञ्ज में साधकों के लिए हर माह दि. १ से ९, ११ से १९ तथा २१ से २९ की अवधि में नौ-नौ दिवसीय जीवनी साधना सत्र बराबर चलते रहते हैं। इनमें कोई भी साधक स्वीकृति मँगाकर शामिल हो सकते हैं। आश्रम के अनुशासनों-मर्यादाओं का पालन अनिवार्य है, साधना सत्रों की भागीदारी के लिए कोई आर्थिक शुल्क निर्धारित नहीं है।

गायत्री तपोभूमि मथुरा में समय-समय पर साधकों को अपने ढंग से साधना करने की सुविधा प्रदान की जाती है। दोनों स्थानों पर साधनात्मक मार्गदर्शन के अतिरिक्त नित्य यज्ञ एवं संस्कार आदि की सुविधाएँ उपलब्ध रहती हैं। वातावरण में दिव्यता का समावेश होने से ऐसे पवित्र तीर्थ क्षेत्र में साधना करना अन्य स्थानों की अपेक्षा कई गुना लाभदायक होता है।

आरती गायत्री जी की

जयति जय गायत्री माता। जयति जय गायत्री माता॥

आदि शक्ति तुम अलख निरञ्जन, जग पालन कर्त्री।
दुःख, शोक, भय, क्लेश, कलह, दारिद्र्य, दैन्य हर्त्री॥

ब्रह्मरूपिणी प्रणत पालिनी, जगद्धातृ अम्बे।
भव भय हारी, जन हितकारी सुखदा जगदम्बे॥
भय हारिणि, भव तारिणि, अनघे, अज आनन्द राशी।
अविकारी, अघहरी, अविचलित, अमले, अविनाशी॥
कामधेनु सत् चित् आनन्दा जय गंगा गीता।
सविता की शाश्वती शक्ति तुम सावित्री सीता॥
ऋग्, यजु, साम, अथर्व प्रणयिनी, प्रणव, महामहिमे।
कुण्डलिनी सहस्त्रार सुषुम्ना शोभा गुण गरिमे॥
स्वाहा, स्वधा, शची, ब्रह्माणी, राधा, रुद्राणी।
जय सतरूपा वाणी विद्या कमला कल्याणी॥
जननी हम हैं दीन-हीन दुःख दारिद के घेरे।
यदपि कुटिल कपटी कपूत तऊ बालक हैं तेरे॥
स्नेह सनी करुणामयि माता! चरण-शरण दीजै।
बिलख रहे हम शिशु सुत तेरे दया दृष्टि कीजै॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ, दुर्भाव, द्वेष हरिये।
शुद्ध, बुद्ध, निष्पाप हृदय मन को पवित्र करिये॥
तुम समर्थ सब भाँति तारिणी, तुष्टि-पुष्टि त्राता।
सत मारग पर हमें चलाओ जो है सुख दाता॥
जयति जय गायत्री माता। जयति जय गायत्री माता॥

गायत्री स्तवन

यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालं, रत्नप्रभम् तीव्रमनादिरूपम्।
दारिद्र्य दुःखक्षयकारणं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥१॥
यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितम्, विप्रैः स्तुतं मानवमुक्तिकोविदम्।
तं देवदेवं प्रणमामि भर्गं, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥२॥
यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं, त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम्।
समस्ततेजोमयदिव्यरूपं, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥३॥
यन्मण्डलं गूढमतिप्रबोधम्, धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम्।
यत् सर्वपापक्षयकारणं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥४॥

यन्मण्डलं व्याधि विनाशदक्षम्, यदृग् यजुः सामसु सम्प्रगीतम्।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥५॥

यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति, गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः।
यद्योगिनो योगजुषां च संघाः, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥

यन्मण्डलं सर्वजनेषु पूजितम्, ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके।
यत्काल कालादिमनादिरूपम्, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥७॥

यन्मण्डलं विष्णुचतुर्मुखास्यम्, यदक्षरं पापहरं जनानाम्।
यत्कालकल्पक्षयकारणं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥८॥

यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्धम्, उत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम्।
यस्मिन् जगत् संहरतेऽखिलं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥९॥

यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोः, आत्मा परं धाम विशुद्धतत्वम्।
सूक्ष्मान्तरैर्योगपथानुगम्यम्, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥१०॥

यन्मण्डलं ब्रह्मविदो वदन्ति, गायन्ति यच्चारण सिद्धसंघाः।
यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥११॥

यन्मण्डलं वेदविदोपगीतम्, यद्योगिनां योगपथानुगम्यम्।
तत्सर्ववेदं प्रणमामि दिव्यं, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥१२॥

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा